स्मरण

'सुमन दा' : पर आँखें भरीं-भरीं

उद्भ्रांत

२७ नवंबर की रात देर से घर लौटने के कारण समाचार नहीं सुन सका था। कोई दस बजे के आस-पास प्रमोद सिनहा का फोन आया, 'सुमनजी नहीं रहे!' स्तब्ध-संतप्त। मित्र से मिली इस शोकप्रद सूचना के बाद ज्यादा बात नहीं हो सकी। फोन पर कुछ मिनटों की बातचीत सुमनजी की स्मृतियों पर ही केंद्रित रही और अचानक मैं स्वयं को हताश एवं डूबा हुआ महसूस करने लगा।

बीच-बीच में खबरों से और मित्रों से तो यह सूचना मिलती ही रही थी कि सुमनजी अस्वस्थ हैं या अस्पताल में भरती हैं अथवा पत्र लिखते हुए उनके हाथ काँपते हैं—स्वयं सुमनजी ने भी मुझे अपनी अशक्तता की जानकारी दी थी। गत वर्ष सितंबर २००१ में नोएडा स्थित हमारी कॉलोनी केंद्रीय विहार के निवासियों ने जब यहाँ कवि सम्मेलन कराने की इच्छा व्यक्त की तो मैंने अध्यक्षता के लिए सुमनजी से फोन पर संपर्क किया। मंच के उनके प्रिय कवि नीरज और सोम आ ही रहे थे। अपने चिर-परिचित अंदाज में उन्होंने मुझे दूरदर्शन के उपकार्यक्रम नियंत्रक से कार्यक्रम नियंत्रक बनने पर तमाम बधाइयाँ और आशीर्वाद दिए और गहरी इच्छा होते हुए भी अस्वस्थता के कारण विमान से भी आने-जाने में असमर्थता व्यक्त की। फिर उन्होंने बच्चनजी की कुशल-क्षेम और स्वास्थ्य का हाल पूछा—बिना यह खयाल किए कि बच्चनजी बरसों से मुंबई में हैं और मैं दिल्ली में। फिर भी आज के अत्याधुनिक द्रुतगामी संचार युग में उनके बारे में जो भी अद्यतन जानकारी मुझे थी, मैंने सुमनजी को दी। प्रसंगवश यह भी कि सुमनजी की बातचीत या उनके पत्र किसी-न-किसी संदर्भ में बच्चन-स्मरण के बिना शायद ही पूर्ण हुए हों। इसी क्रम में उन्होंने मेरी बच्चियों की शिक्षा-दीक्षा की जानकारी ली और एक बार फिर उज्जैन आने का निमंत्रण देते हुए कहा कि तुम्हें कालिदास समारोह में उज्जैन आना है। कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली में मेरी पोस्टिंग की जानकारी होने पर भी उन्होंने पत्र लिखकर मुझे उज्जैन आने के लिए कहा था। मगर मेरे दुर्भाग्य से उज्जैन जाकर उनके दर्शन करने के कुछ अवसर मिलने के बावजूद यथार्थ में परिणत नहीं हो सके, यह दु:ख मुझे हमेशा सालता रहेगा। यह कभी नहीं सोचा था कि वे इस तरह अचानक चले जाएँगे। उनकी जीवंतता, सक्रियता और गर्मजोशी हमें विश्वास दिलाती थी कि वे जीवन का शतक पूर्ण करेंगे। उनकी साँसों के तार के जरिए उस विश्वास के अचानक टूटने से मैं जैसे हतप्रभ हो गया।

वर्ष भर पूर्व की उनकी टेलीफोन-वार्त्ता के बच्चन प्रसंग का स्मरण आते ही मेरा ध्यान एक चकित करनेवाले दु:खद संयोग की तरफ गया।

दिन में तमाम कार्यालयीन व्यस्तताओं के बीच बच्चनजी के जन्मदिवस की शुभकामनाओं का एक पत्र श्री अमिताभ बच्चन को फैक्स किया था। सब जानते हैं कि अस्वस्थता और वृद्धावस्था के कारण हर पत्र का उत्तर देने के लिए विख्यात बच्चनजी के लिए अब पत्रोत्तर देना संभव नहीं रहा है। मगर अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद ऐसे पत्र का उत्तर देना श्री अमिताभ कभी नहीं भूलते। कम-से-कम मेरा तो यह अनुभव है ही।

वर्ष १९८८ में प्रकाशित इन पंक्तियों के लेखक को लिखे बच्चनजी के एक सौ उन्नीस पत्रों के संकलन 'पत्र ही नहीं बच्चन मित्र हैं' की 'अत्र कुशलं तत्रास्तु' शीर्षक भूमिका में सुमनजी ने लिखा था—'बच्चनजी की और मेरी मित्रता को चौवन-पचपन वर्ष होने को आए…'। और यह मित्रता कितनी गहरी थी, इसकी कुछ झलक हाल में प्रकाशित अजित कुमार द्वारा संपादित 'बच्चन के चुने हुए पत्र' नामक संकलन में सुमनजी के नाम बच्चनजी के कुछ पत्रों से मिल जाती है—विशेषकर क्रम सं. १२७ पर दिनांक १५.११.१९७२ को लिखे पत्र से, जिसकी अंतरंग भाषा का स्वरूप वही है जो बचपन के लँगोटिया यारों की भाषा का होता है ('तुम ऊँची जगह पर हो। लोग जानते हैं कि तुम मेरे अभिन्न हो। हो ही। तो वे मेरे जरिए तुमसे कुछ काम कराना चाहते हैं। कैसा…जमाना है कि किसी को न्याय-सच्चाई में भरोसा नहीं रह गया। सब source का……पकड़कर आगे बढ़ना चाहते हैं।'), मगर जिसे यथावत् उद्धृत करना शालीनता के दायरे में नहीं आएगा।

इस अभिन्न मित्रता का एक और प्रमाण बीसवीं सदी के अंतिम दशक में प्रकाशित शिवमंगल सिंह 'सुमन' के नवीनतम काव्य-संग्रह 'कटे अँगूठे की बंदनवारें' से मिलता है, जिसे उन्होंने बच्चनजी को ही समर्पित किया, मगर बच्चनजी की अस्वस्थता के चलते जिसे व्यक्तिगत रूप से उन्हें भेंट करने की उनकी इच्छा अधूरी ही रही—जैसाकि मेरे मुंबई दूरदर्शन के कार्यकाल में मुझे लिखे उनके एक पत्र से जानकारी हुई।

तो मित्रो, मेरा ध्यान चकित करनेवाले इस विचित्र मगर दु:खद संयोग की तरफ गया कि जीवन भर बच्चनजी के साथ प्रगाढ़ मैत्री-संबंध निभानेवाले सुमनजी ने महाप्रयाण के लिए अपने सर्वाधिक निकट अग्रज मित्र के जन्मदिन को ही चुना!

शिवमंगल सिंह 'सुमन' छायावादोत्तर काल के एक ऐसे महत्त्वपूर्ण शिखर कवि हैं जिन्होंने एक ओर अपनी कविता में प्रगतिशील विचारधारा

का लाल परचम फहराया तो दूसरी ओर राष्ट्रीयता की अलख भी जगाई और प्रकृति के अनूठे सौंदर्य के साथ-साथ शृंगार से भी अपने काव्य के पाठकों को उन्होंने वंचित नहीं किया (मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार, पथ ही मुड़ गया था)। उनकी कविताएँ स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम से प्रारंभ होकर डिग्री स्तर तक पढ़ाई जाती रही हैं (कालांतर में—वर्ष १९७८ में प्रकाशित मराठवाड़ा विश्वविद्यालय की बी.ए. कक्षाओं के लिए संपादित कविता की पाठ्य पुस्तक 'त्रिताल' में तो मैंने स्वयं अज्ञेय, बच्चन, दिनकर, भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, नागार्जुन के साथ उन्हें भी शामिल किया था)। मैंने भी पढ़ी होंगी; मगर प्राइमरी स्तर पर कविता पढ़ते समय कवि के नाम की ओर ध्यान कम जाता है, इसलिए उस समय पढ़ी गई उनकी किसी कविता की याद मुझे नहीं है, लेकिन यह खूब स्मरण है कि हाई स्कूल की पढ़ाई करते हुए कॉलेज के पुस्तकालय से कविता की जो पुस्तकें मैंने पढ़ीं, यानी वर्ष १९६१-६२ में, उनमें सुमनजी की 'विंध्य हिमालय' और 'विश्वास बढ़ता ही गया' जैसी पुस्तकें भी थीं, जो मेरे भीतर भावनाओं का संचार करती थीं; स्फूर्ति, ओज और उत्साह भरती थीं। वह अवस्था ऐसी थी जब कवि हमारे लिए एक नायक जैसा होता था और उसे लेकर हम मन में तरह-तरह की कल्पनाएँ किया करते थे। सुमनजी के नायकत्व से परिचय तो बाद में हुआ और खूब हुआ।

शायद वह वर्ष १९६६ था, जब कानपुर की 'कला वलय' संस्था ने 'सुमन अभिनंदन' का आयोजन किया। उसके एक वर्ष पूर्व हंस कुमार तिवारी का भवानी भाई की अध्यक्षता में और उसके एक वर्ष बाद बच्चनजी का भी अभिनंदन उसी संस्था द्वारा किए जाने की मुझे याद है। तो 'कला वलय' के उस आयोजन में मैंने सुमनजी के नायकत्व की प्रत्यक्ष अनुभूति की। बिखरे बाल, बीच से निकाली हुई माँग, बड़ी-बड़ी आँखें, होंठों पर स्मिति, श्रोताओं को अपने जादू में बाँध लेनेवाली अद्‌भुत वक्तृत्व कला और कविता-पाठ की निराली शैली, जिसपर निराला की छाप स्पष्ट नजर आती थी। बाद में जब कानपुर में ही मैंने सुमनजी के मुख से निराला की प्रसिद्ध कविता 'राम की शक्तिपूजा' सुनी तो लगा, जैसे निराला साक्षात् अवतरित हो गए हों।

बैसवाड़े की धरती ने हिंदी काव्याकाश को जिन नक्षत्रों से समृद्ध किया, निराला के बाद सुमन निश्चय ही उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। उन्नाव की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था 'भारती परिषद्' उनका जन्मोत्सव प्रतिवर्ष अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का आयोजन कर धूमधाम से मनाती थी, जिसमें सुमनजी स्वयं शरीक होते थे। इस जन्मोत्सव को साहित्योत्सव का रूप देने के लिए संस्था ने 'सुमन पुरस्कार' की स्थापना की।

इंफाल दूरदर्शन से स्थानांतरित होकर जुलाई १९९३ में मैंने मुंबई दूरदर्शन में सहायक केंद्र निदेशक के पद पर कार्यभार ग्रहण किया। कुछ ही समय बाद वहाँ हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का अधिवेशन था जिसके या तो सुमनजी स्वागताध्यक्ष थे या उन्हें इसका उद्‌घाटन करना था। ठीक से मुझे याद नहीं है। नामवरजी भी इसमें मुख्य अतिथि थे। शैलेश मटियानी और दूधनाथ सिंह के होने का भी स्मरण है। मुझे मुंबई में देखकर वे जिस तरह खुशी से भर गए, उसे मैं शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकता। अधिवेशन के उद्‌घाटन समारोह के कुछ पहले मुख्य द्वार के बाहर कई अतिथि साहित्यकारों के साथ सुमनजी खड़े थे। मैं उनसे बात कर रहा था। नामवरजी तब तक नहीं आए थे। शायद सुमनजी को उन्हीं का इंतजार था। अचानक नामवरजी सामने से प्रकट हुए। उनके प्रकट होने की अदा बिलकुल राजनेताओंवाली थी। उन्हें देखकर चारों ओर हलचल मची। सुमनजी का चेहरा खिल गया। नामवरजी आगे बढ़े और उन्होंने बड़े आदर के साथ सुमनजी के चरण-स्पर्श किए। नामवरजी के व्यक्तित्व का यह पक्ष मेरे लिए नया था और इसने मुझे अभिभूत भी किया। उनकी विवादास्पद छवि के बरक्स अपने से बड़ों के प्रति सार्वजनिक रूप से आदर व्यक्त करने के उनके संस्कार, अच्छा हो कि हमेशा गाली-गलौज और तीखे, नकारात्मक तेवर अपनानेवाली हमारी नई पीढ़ी में भी आएँ। प्रगतिशीलता का अर्थ क्या अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से विच्छिन्न हो जाना है? स्वयं सुमनजी में ये संस्कार बहुत गहरे रहे हैं; मगर उनकी प्रगतिशीलता पर कोई मूर्ख ही संदेह करेगा।

मुंबई में आठ-नौ वर्ष पूर्व की वह भेंट ही अंतिम भेंट सिद्ध हुई। मेरे मन में यह छटपटाहट बनी रही कि मैं कभी उज्जैन जाकर उनके दर्शन करूँ। इधर कुछ वर्षों से मैं उन्हें पत्र भी नहीं लिख पा रहा था। मन में यह आशा बनी रहती थी कि शायद कोई सुयोग ऐसा हो कि मैं उज्जैन ही पहुँचकर उनसे इधर पत्राचार न कर पाने की अपनी लाचारी के लिए व्यक्तिगत रूप से क्षमा माँगूँ। उनका अंतिम पत्र तीन-चार वर्ष पूर्व का है। सुमनजी के काफी पत्र मेरे पास हैं। कभी समय और अवसर मिला तो वे प्रकाश में भी आएँगे और हिंदी के पत्र-साहित्य की अमूल्य निधि सिद्ध होंगे। अभी तो मैं हिंदी के इस शिखर काव्य-व्यक्तित्व को उनकी माटी की काया के नि:शेष होने पर अंतिम प्रणाम निवेदित करते हुए यह कामना ही कर सकता हूँ कि सुमनजी के कृतित्व का एक बार पुनरावलोकन होगा और उन्हें लोकप्रियता दिलानेवाले उनके बहुरंगी व्यक्तित्व ने उनके काव्य पुरुष को हाशिए पर डालने की कोशिश करते हुए जो क्षति पहुँचाई उसकी भी पड़ताल आनेवाला वक्त पूर्वग्रहमुक्त होकर करेगा; क्योंकि ऐसे रचनाकार बार-बार हमारे बीच नहीं आते। एक बार जाने के बाद वे सिर्फ याद आते हैं—हमारी चेतना की आँखों में नमी पैदा करने के लिए।

सुमनजी का विख्यात गीत है—'कितनी बार तुम्हें देखा पर आँखें नहीं भरीं।' उनके महाप्रयाण की खबर मिलने के बाद उनके स्मृति-चित्र को न जाने कितनी बार देखा है और हर बार आँखें सजल हो गई हैं। प्रकृति के नियम बड़े निष्ठुर होते हैं। प्रिय से प्रियतम तक के देहावसान के कुछ दिनों बाद ही जीवन का कार्य-व्यापार फिर पूर्ववत् चलने लगता है। लिहाजा इन आँखों को अब तो सूख ही जाना चाहिए था—आखिरकार यह बात क्या है सुमन दा'—'पर आँखें भरीं-भरीं'! □

'अनहद', बी-४६३, केंद्रीय विहार,
सेक्टर-५१, नोएडा-२०१३०७